प्राकृतविद्या

वर्ष 26, अंक 4 अक्टूबर-दिसम्बर 2014 ई.

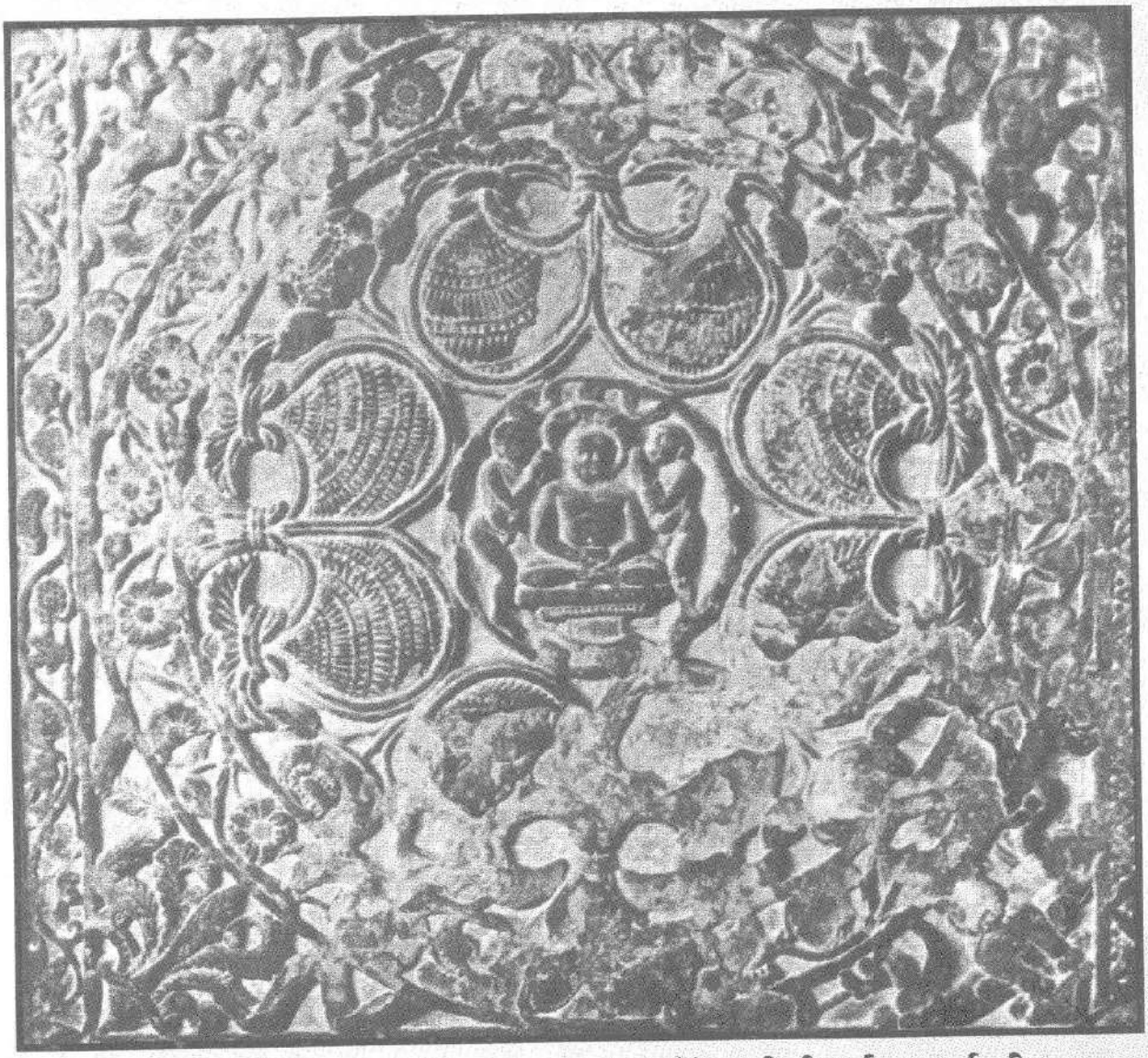

कंकाली टीला मथुरा से प्राप्त आयागपट्ट में उत्कीर्ण अर्हत पार्श्व की
प्राचीनतम दुर्लभ प्रतिमा पूर्वकुषाणकालीन द्वितीय सदी पूर्वार्द्ध
लेख-नमो अहनतान्..... शिव घोस (T)..... आयाग
लखनऊ म्यूजियम में सुरक्षित

ISSN No. 0971-796 ×

प्राकृत-विद्या
पागद-विज्जा

PRAKRIT-VIDYA
Pāgada-Vijjā

प्राकृत, अपभ्रंश आदि प्राच्य भारतीय भाषाओं की हिन्दी तक की विकास-यात्रा दर्शानेवाली समर्पित त्रैमासिकी शोध-पत्रिका

A quarterly journal devoted to researches on the development of Prakrit, Apabhramsha and Ancient Indian Languages upto Hindi Language

वीर निर्वाण संवत् 2541 अक्टूबर-दिसम्बर 2014 वर्ष 26 अंक 4
VeerNirvanSamvat 2541 October-December 2014 Year 26 Issue4

आचार्य कुन्दकुन्द समाधि-संवत् 2023-2024

सम्पादक-मण्डल

श्री पुनीत जैन
(नवभारत टाइम्स)

डॉ. रमेश कुमार पाण्डेय
(ला.ब.शा.रा. संस्कृत विद्यापीठ)

मानद सम्पादक
प्रो. (डॉ.) वीरसागर जैन
(श्री ला.ब..शा.रा. संस्कृत विद्यापीठ, नई दिल्ली)

प्रबन्ध सम्पादक
श्री सतीश जैन (आकाशवाणी)

प्रकाशक
श्री मुकेश कुमार जैन
महामन्त्री
श्री कुन्दकुन्द भारती ट्रस्ट
18-बी, स्पेशल इन्स्टीट्यूशनल एरिया,
नई दिल्ली-110067
फोन : (011) 26564510, 26513138
ई-मेल: kundkundbharti@gmail.com

Publisher
MUKESH KUMAR JAIN
Secretary
Shri Kundkund Bharti Trust
18-B, Special Institutional Area
New Delhi-110067
Phone: (011) 26564510, 26513138
E-mail: kundkundbharti@gmail.com

इस प्रति का मूल्य—बीस रुपया

अनुक्रम

क्र.सं.	शीर्षक	लेखक	पृष्ठ सं.
1.	मंगलाचरण : धवल तेज की जय हो	आचार्य वीरसेन स्वामी	3
2.	सम्पादकीय : सूत्र के बत्तीस दोषों का संक्षिप्त विवेचन	प्रो. (डॉ.) वीरसागर जैन	5
3.	अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग	आचार्य विद्यानन्द मुनि	13
4.	प्राकृत-प्रशिक्षण 10 : शब्द रूप-विवेचन	एलाचार्य प्रज्ञसागर मुनि	27
5.	जैन धर्म में निरूपित ध्यान का वैशिष्ट्य	प्रो. (डॉ.) प्रेम सुमन जैन	32
6.	डॉ. एल.पी. तैस्सितोरी और उनका प्राकृत-जैन विद्या के प्रति लगाव	डॉ. श्रीमती बसन्ती हर्ष	45
7.	शौरसेनी प्राकृत भाषा की विशेषताएँ		50
8.	संस्कृत-काव्यों में राज्य की दण्ड-व्यवस्था	श्रीमती नीरू देवी ओझा	53
9.	आयुर्वेद के सर्वथा अज्ञात, अनुपलब्ध एवं अप्रकाशित दो महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ	स्व. पं. कुन्दनलाल जैन	62
10.	प्राकृत सुभाषित संग्रह	प्रो. (डॉ.) के.वा. आपटे	69
11.	प्राकृत-विद्या : तीन कविताएँ	महाकवि योगेन्द्र दिवाकर	72
12.	प्राकृत-आगमों में प्रतिपादित जीवन-मूल्य	डॉ. अनेकान्त कुमार जैन	74
13.	रत्नकरण्ड श्रावकाचार में सामयिक का स्वरूप	डॉ. श्रीमती कल्पना जैन	80
14.	जैनाचार-परम्परा में प्रतिमा-विवेचन.....	डॉ. वन्दना मेहता	88
15.	समाचार-दर्शन		103

ग्रन्थ-रचना के लिए शौरसेनी प्राकृत ही उपयुक्त है

कुन्दकुन्द तीर्थंकर महावीर के उपदेश को जन-साधारण तक पहुँचाना चाहते थे। दूसरे, छक्खंडागम, कसायपाहुड जैसे दिगम्बर आगम-ग्रन्थों के शौरसेनी प्राकृत में निबद्ध होने से उनकी सुदीर्घ परम्परा भी उन्हें प्राप्त थी। अतएव उन्होंने अपनी ग्रन्थ-रचना के लिए प्राकृत को ही उपयुक्त समझा। उनकी यह प्राकृत 'शौरसेनी' प्राकृत है। कुन्दकुन्द के उत्तरवर्ती शतशः आचार्यों ने भी शौरसेनी प्राकृत में प्रचुर ग्रन्थों की रचना की है।

–(समयसार का दार्शनिक पृष्ठ, डॉ. दरबारीलाल कोठिया, न्यायाचार्य, 'अनेकान्त', वर्ष 41, किरण 1, जनवरी-मार्च 1988, पृष्ठ 8)

जैनाचार-परम्परा में प्रतिमा-विवेचन 'सागारधर्मामृत' के परिप्रेक्ष्य में

—डॉ. वन्दना मेहता

विश्व संस्कृति के आलोक में भारतीय संस्कृति व्यक्ति प्रधान है, स्वकेन्द्रित है; क्योंकि व्यक्ति स्वयं ही अपने भाग्य का निर्माता होता है, सुख-दुःख का कर्त्ता होता है; अतः यहाँ व्यक्ति-प्रधान साधना-पद्धति विकसित हुई। श्रमणधर्म ही नहीं, बल्कि श्रावकधर्म की साधना भी यहाँ व्यक्तिपरक है।

जैन साहित्य में साधक की योग्यतानुसार साधना-पद्धति के विविध रूपों के उल्लेख मिलते हैं। जैन परम्परा में श्रावक साधना क्रम में भद्रक श्रावक, सम्यक्दर्शनी श्रावक, व्रती श्रावक और प्रतिमाधारी श्रावक, यह उत्तरोत्तर श्रावक साधना पद्धति का विकसित रूप देखा जाता है। भद्रक केवल धर्मानुरागी होता है। जब उसका धर्मानुराग विकसित होता है, तब वह सम्यक्दर्शनी होता है और धर्मानुराग की दृढ़ता होने पर वह पाँच अणुव्रतों और सात शिक्षाव्रतों को स्वीकार कर बारहव्रती श्रावक बनता है। इस प्रकार व्रतों का सम्यक् प्रकार से पालन करता हुआ त्याग मार्ग की ओर जागरूकता से आगे बढ़ता है और साधना की तीव्र भावना उत्पन्न होने पर गृहस्थ की प्रवृत्तियों से निवृत्त होकर कुटुम्ब का उत्तरदायित्व संतान को समर्पित कर स्वयं प्रतिमाओं को स्वीकार करता है।

प्रतिमा का अर्थ

जिनदासगणिमहत्तर (635-710) ने दशाश्रुतस्कन्ध चूर्णि में प्रतिमा का अर्थ प्रतिपादित करते हुए कहा है कि **'प्रतिपत्तिः प्रतिमाणं वा पडिमा'**[1] अर्थात् प्रतिपत्ति प्रतिमान (मापदण्ड) प्रतिमा है। इसी तरह शीलांकसूरि (862/872) ने आचारचूला वृत्ति में **'प्रतिमाभिः अभिग्रहविशेषभूताभिः'**।[2] अर्थात् अभिग्रह विशेष को प्रतिमा कहा है। कुछ इसी तरह की बात ग्यारहवीं ई. सदी में अभयदेवसूरि (1015-1078) ने स्थानांगवृत्ति में बताई है कि **'प्रतिमा प्रतिपत्तिः प्रतिज्ञेति यावत्'**[3] और **'प्रतिमा प्रतिज्ञा अभिग्रहः'** है।[4] इस प्रकार साररूप में प्रतिमा प्रतिज्ञाविशेष, व्रतविशेष, तपविशेष साधना-पद्धति कही जा सकती है।

प्रतिमा शब्द जहाँ प्रतीक या प्रतिबिम्ब का वाचक है, वहीं इसका एक अर्थ प्रतिमान या मापदण्ड भी है।

प्रतिमाओं का आधार

दशाश्रुतस्कन्ध के अनुसार इन प्रतिमाओं का आधार सम्यग्दर्शन और प्रथम ग्यारह व्रत हैं। प्रथम प्रतिमा का आधार सम्यग्दर्शन है, दूसरी प्रतिमा का आधार पाँच अणुव्रत और तीन गुणव्रत हैं, तीसरी प्रतिमा का आधार सामायिक और देशावकाशिक (प्रथम दो शिक्षाव्रत) हैं। चौथी प्रतिमा का आधार प्रौषधोपवास व्रत है। शेष प्रतिमाओं में इन्हीं व्रतों का उत्तरोत्तर विकास किया गया है। लेकिन दिगम्बर परम्परानुसार चार शिक्षाव्रत को ग्यारह प्रतिमाओं का आधार माना है। यहाँ पर पहली और दूसरी प्रतिमा का आधार श्वेताम्बर परम्परा की तरह ही कोई शिक्षाव्रत न होकर दर्शन प्रतिमाधारी के लिए सम्यक्त्व, अष्टमूलगुणों का धारण और सप्तव्यसन का परित्याग आवश्यक बताया है। दूसरी प्रतिमा के लिए बारह व्रतों का निरतिचार और दृढ़तापूर्वक तीन शल्य (माया, मिथ्यात्व और निदान) रहित पालन आवश्यक बताया है। तीसरी सामायिक प्रतिमा का आधार सामायिक शिक्षाव्रत माना है। चौथी प्रौषध प्रतिमा का आधार प्रौषधोपवास शिक्षाव्रत माना है। पाँचवीं सचित्तत्याग प्रतिमा का आधार भोगोपभोगपरिमाण व्रत बताया है, क्योंकि इसके अन्तर्गत सचित्त शाक आदि पदार्थों को खाने का यावज्जीवन के लिए त्याग करता है। आगे की प्रतिमाओं का आधार भी भोगोपभोगपरिमाण व्रत ही बनता है।

प्रतिमाधारक की पात्रता

जिस प्रकार भिक्षु प्रतिमा धारण करने वाले को विशुद्ध संयम पर्याय और विशिष्ट श्रुत का ज्ञान होना आवश्यक होता है, उसी प्रकार उपासक प्रतिमा धारण करने वाले को भी बारह व्रतों के पालन का अभ्यास होना और कुछ श्रुतज्ञान होना भी आवश्यक है, किन्तु इसका कुछ स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता। फिर भी इतना तो अवश्य कहा जा सकता है कि प्रतिमाधारी प्रायः वे ही बनते हैं जो अपने आपको श्रमण बनने के योग्य नहीं पाते। किन्तु जीवन के अंतिम काल में श्रमण जैसा जीवन बिताने के इच्छुक होते हैं और जो श्रमण जीवन बिताने का पूर्वाभ्यास करते हैं।

* सहायक आचार्य, जैनोलॉजी विभाग, जैन विश्व भारती, लाडनूं, (राज.)